मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास
गीताप्रेस,
गोरखपुर

पहली बार ५२५० सं० १९८९

मूल्य -)।
सवा आना

ॐ श्रीहरिः

जगत्में सबसे उत्तम और अवश्य जानने योग्य कौन है ?

ईश्वर

इस संसारमें सबसे पुराने ग्रन्थ वेद हैं। योरपके विद्वान् भी इस बातको मानते हैं कि ऋग्वेद कम-से-कम ४००० चार सहस्र वर्ष पुराना है और उससे पुराना कोई ग्रन्थ नहीं। ऋग्वेद पुकारकर कहता है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अन्धकारमय था। उस तमके बीचमें और उससे परे केवल एक ज्ञानस्वरूप स्वयम्भू भगवान् विराजमान थे और उन्होंने उस अन्धकारमें अपनेको आप प्रकट किया और अपने तपसे अर्थात् अपनी ज्ञानमयी शक्तिके सञ्चालनसे सृष्टिको रचा। ऋग्वेदमें लिखा है—

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्॥

इसी वेदके अर्थको मनु भगवान्ने लिखा है कि सृष्टिके पहले यह जगत् अन्धकारमय था। सब प्रकारसे सोता हुआ-सा दिखायी पड़ता था। उस समय जिनका किसी दूसरी शक्तिके द्वारा जन्म नहीं हुआ, जो आप अपनी शक्तिसे अपनी

महिमामें सदासे वर्तमान हैं और रहेंगे, उन ज्ञानमय, प्रकाशमय स्वयम्भूने अपनेको आप प्रकट किया और उनके प्रकट होते ही अन्धकार मिट गया। मनुस्मृतिमें लिखा है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ॥

ऋग्वेद कहता है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आविवेश॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

और भी श्रुति कहती है—

'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्'

'एकमेवाद्वितीयम्'

भागवतमें भगवान्‌का वचन है—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्सदसतः परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

(२।९।३२)

सृष्टिके आदिमें कार्य (स्थूल) और कारण (सूक्ष्म) से अतीत एकमात्र मैं ही था, मेरे सिवा और कुछ भी न था। सृष्टिके पश्चात् भी मैं ही रहता हूँ और यह जो जगत्प्रपञ्च दीख पड़ता है वह भी मैं ही हूँ तथा सृष्टिका संहार हो जानेपर जो कुछ बच रहता है वह भी मैं ही हूँ।

शिवपुराणमें भी लिखा है—

एक एव तदा रुद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन ।
संसृज्य विश्वं भुवनं गोप्तान्ते संचुकोच सः ॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः ।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयुतः ॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः ।
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोद्भवस्तथा ॥
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषं परम् ॥

उस समय एक रुद्र ही थे, दूसरा कोई न था। उन जगत्-रक्षकने ही संसारकी रचना करके अन्तमें उसका संहार कर

दिया। उनके चारों ओर नेत्र हैं, चारों ओर मुख हैं, चारों ओर भुजाएँ हैं तथा चारों ओर चरण हैं। पृथ्वी और आकाशको उत्पन्न करनेवाले एक महेश्वर देव ही हैं, वे ही सब देवताओंके कारण और उत्पत्तिके स्थान हैं। जो बिना आँख-कानके ही देखते और सुनते हैं, जो सबको जानते हैं तथा उन्हें कोई नहीं जानता, वे परम पुरुष कहे जाते हैं।

भागवतमें लिखा है—

एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः॥
(१०।१४।२३)

वह एक ही आत्मा पुराण पुरुष, सत्य, स्वयंप्रकाशस्वरूप, अनन्त, सबका आदिकारण, नित्य, अविनाशी, निरन्तर सुखी, मायासे निर्लिप्त, अखण्ड, अद्वितीय, उपाधिसे रहित तथा अमर है।

सब वेद, स्मृति, पुराणके इसी तत्त्वको गोस्वामी तुलसीदासजीने थोड़े अक्षरोंमें यों कह दिया है—

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी। सत चेतन घन आनँदराशी॥
आदि-अन्त कोउ जासु न पावा। मति-अनुमान निगम यश गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आननरहित सकल रस-भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी॥
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्राण बिनु बास अशेखा॥
अस सब भाँति अलौकिक करणी। महिमा तासु जाइ किमि बरणी॥

किन्तु यह विश्वास कैसे हो कि ऐसा कोई परमात्मा है ?

जो वेद कहते हैं कि यह परमात्मा है वही यह भी कहते हैं कि उसको हम आँखोंसे नहीं देख सकते।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः॥

'ईश्वरको कोई आँखोंसे नहीं देख सकता, किन्तु हममेंसे हर एक मनको पवित्रकर विमल बुद्धिसे ईश्वरको देख सकता है।' इसलिये जो लोग ईश्वरको मनकी आँखों (बुद्धि) से देखना चाहते हैं, उनको उचित है कि वे अपने शरीर और मनको पवित्रकर और बुद्धिको विमलकर ईश्वरकी खोज करें।

हम देखते क्या हैं ?

हमारे सामने जन्मसे लेकर शरीर छूटनेके समयतक बड़े-बड़े चित्र-विचित्र दृश्य दिखायी देते हैं जो हमारे मनमें इस बातके जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा उत्पन्न करते हैं कि वे कैसे उपजते हैं और कैसे विलीन होते हैं ? हम प्रतिदिन देखते हैं कि प्रातःकाल पौफट होते ही सहस्र किरणोंसे विभूषित सूर्य-मण्डल पूर्व-दिशामें प्रकट होता है और आकाश-मार्गसे विचरता सारे जगत्को प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता सायंकाल पश्चिम-दिशामें पहुँचकर नेत्रपथसे परे हो जाता है। गणित-शास्त्रके जाननेवालोंने गणनाकर यह निश्चय किया है कि यह सूर्य पृथिवीसे नौ करोड़ अट्ठाईस लाख तीस सहस्र मीलकी

दूरी पर है। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि यह इतनी दूरीसे इस पृथिवीके सब प्राणियोंको प्रकाश, गर्मी और जीवन पहुँचाता है! ऋतु-ऋतुमें अपनी सहस्र किरणोंसे पृथिवीसे जलको खींच-कर सूर्य आकाशमें ले जाता है और वहाँसे मेघका रूप बनाकर फिर जलको पृथिवीपर बरसा देता है और उसके द्वारा सब घास, पत्ती, वृक्ष, अनेक प्रकारके अन्न और धान और समस्त जीव-धारियोंको प्राण और जीवन देता है। गणित-शास्त्र बतलाता है कि जैसा यह एक सूर्य है ऐसे असंख्य और हैं और इससे बहुत बड़े-बड़े भी हैं जो सूर्यसे भी अधिक दूर होनेके कारण हमको छोटे-छोटे तारोंके समान दिखायी देते हैं। सूर्यके अस्त होनेपर प्रतिदिन हमको आकाशमें अनगिनत तारे—नक्षत्र—ग्रह चमकते दिखायी देते हैं। सारे जगत्को अपनी किरणोंसे सुख देनेवाला चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनीसे रात्रिको ज्योतिष्मती करता हुआ आकाशमें सूर्यके समान पूर्व-दिशासे पश्चिम-दिशाको जाता है। प्रतिदिन रात्रिके आते ही दशों दिशाओंको प्रकाश करती हुई नक्षत्र-तारा-ग्रहोंकी ज्योति ऐसी शोभा धारण करती है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ये सब तारा-ग्रह सूतमें बँधे हुए गोलकोंके समान अलंघनीय नियमोंके अनुसार दिन-से-दिन, महीने-से-महीने, वर्ष-से-वर्ष, बँधे हुए मार्गोंमें चलते हुए आकाशमें घूमते दिखायी देते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि गर्मीकी ऋतुमें यदि सूर्य तीव्र-रूपसे नहीं तपता तो वर्षाकालमें वर्षा अच्छी नहीं होती, यह भी प्रत्यक्ष है कि यदि वर्षा न हो तो

जगत्‌में प्राणीमात्रके भोजनके लिये अन्न और फल न हों। इससे हमको स्पष्ट दिखायी देता है कि अनेक प्रकारके अन्न और फलद्वारा सारे जगत्‌के प्राणियोंके भोजनका प्रबन्ध मरीचि-माली सूर्यके द्वारा हो रहा है। क्या यह प्रबन्ध किसी विवेकवती शक्तिका रचा हुआ है जिसको स्थावर-जंगम सब प्राणियोंको जन्म देना और पालना अभीष्ट है अथवा यह केवल जड-पदार्थोंके अचानक संयोगमात्रका परिणाम है? क्या यह परम आश्चर्यमय गोलक-मण्डल अपने आप जड-पदार्थोंके एक दूसरेके खींचनेके नियममात्रसे उत्पन्न हुआ है और अपने आप आकाशमें वर्ष-से-वर्ष, सदी-से-सदी, युग-से-युग घूम रहा है, अथवा इसके रचने और नियमसे चलानेमें किसी चैतन्य शक्तिका हाथ है? बुद्धि कहती है कि 'है', वेद भी कहते हैं कि 'है'। वे कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमाको, आकाश और पृथिवीको परमात्माने रचा।

सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्,
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः।

प्राणियोंकी रचना

इसी प्रकार हम देखते हैं कि प्राणात्मक जगत्‌की रचना इस बातकी घोषणा करती है कि इस जगत्‌का रचनेवाला एक ईश्वर है। यह चैतन्य जगत् अत्यन्त आश्चर्यसे भरा हुआ है। जरायुसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, सिंह, हाथी, घोड़े, गौ आदि; अण्डोंसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी; पसीने और मैलसे पैदा होनेवाले

कीड़े, पृथिवीको फोड़कर उगनेवाले वृक्ष; इन सबकी उत्पत्ति, रचना और इनका जीवन परम आश्चर्यमय है। नर और नारीका समागम होता है। उस समागममें नरका एक अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु चैतन्य अंश गर्भमें प्रवेशकर नारीके एक अत्यन्त सूक्ष्म सचेत अंशसे मिल जाता है। इसको हम जीव कहते हैं। वेद कहते हैं कि—

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

एक वालके आगेके भागके खड़े-खड़े सौ भाग कीजिये और उन सौमेंसे एकके फिर सौ खड़े-खड़े टुकड़े कीजिये और इसमेंसे एक टुकड़ा लीजिये तो आपको ध्यानमें आवेगा कि उतना सूक्ष्म जीव है। यह जीव गर्भमें प्रवेश करनेके समयसे शरीररूपसे बढ़ता है। विज्ञानके जाननेवाले विद्वानोंने अणुवीक्षण यन्त्रसे देखकर यह बताया है कि मनुष्यके वीर्यके एक विन्दुमें लाखों जीवाणु होते हैं और उनमेंसे एक ही गर्भमें प्रवेश पाकर टिकता और वृद्धि पाता है। नारीके शरीरमें ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि यह जीव गर्भमें प्रवेश पानेके समयसे एक नलीके द्वारा आहार पावे, इसकी वृद्धिके साथ-साथ नारीके गर्भमें एक जलसे भरा थैला बनता जाता है जो गर्भको चोटसे बचाता है। इस सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, अणु-से-अणु, वालके आगेके भागके दस हजारवें भागके समान सूक्ष्म वस्तुमें यह शक्ति कहाँसे आती है कि जिससे यह धीरे-धीरे अपने माता और पिताके समान रूप,

रंग और सब अवयवोंको धारण कर लेता है ? कौन-सी शक्ति है जो गर्भमें इसका पालन करती और इसको बढ़ाती है ? वह क्या अद्भुत रचना है जिससे बच्चेके उत्पन्न होनेके थोड़े समय पूर्व ही माताके स्तनोंमें दूध आ जाता है ? कौन-सी शक्ति है जो सब असंख्य प्राणवन्तोंको, सब मनुष्योंको, सब पशु-पक्षियों-को, सब कीट-पतंगोंको, सब पेड़-पल्लवोंको पालती है और उनको समयसे चारा और पानी पहुँचाती है ? कौन-सी शक्ति है जिससे चींटियाँ दिनमें भी और रातमें भी सीधी भीतपर चढ़ती चली जाती हैं ? कौन-सी शक्ति है जिससे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े पक्षी अनन्त आकाशमें दूर-से-दूरतक बिना किसी आधारके उड़ा करते हैं ।

नरों और नारियोंकी, मनुष्योंकी, गौवोंकी, सिंहोंकी, हाथियोंकी, पक्षियोंकी, कीड़ोंकी सृष्टि कैसे होती है ? मनुष्यों-से मनुष्य, सिंहोंसे सिंह, घोड़ोंसे घोड़े, गौवोंसे गौ, मयूरोंसे मयूर, हंसोंसे हंस, तोतोंसे तोते, कबूतरोंसे कबूतर, अपने-अपने माता-पिताके रंग-रूप-अवयव लिये हुए कैसे उत्पन्न होते हैं ? छोटे-से-छोटे बीजोंसे किसी अचिन्त्य शक्तिसे बढ़ाये हुए बड़े और छोटे असंख्य वृक्ष उगते हैं तथा प्रतिवर्ष और बहुत वर्षों-तक पत्ती, फल, फूल, रस, तैल, छाल और लकड़ीसे जीवधारियोंको सुख पहुँचाते, सैकड़ों, सहस्रों स्वादु, रसीले फलोंसे उनको तृप्त और पुष्ट करते, बहुत वर्षोंतक श्वास लेते, पानी पीते, पृथिवीसे और आकाशसे आहार खींचते आकाशके नीचे झूमते-लहराते रहते हैं ?

इस आश्चर्यमयी शक्तिकी खोजमें हमारा ध्यान मनुष्यके रचे हुए एक घरकी ओर जाता है। हम देखते हैं हमारे सामने यह एक घर बना हुआ है। इसमें भीतर जानेके लिये एक बड़ा द्वार है। इसमें अनेक स्थानोंमें पवन और प्रकाशके लिये खिड़कियाँ तथा झरोखे हैं। भीतर बड़े-बड़े खम्भे और दालान हैं। धूप और पानी रोकनेके लिये छतें और छज्जे बने हुए हैं। दालान-दालानमें, कोठरी-कोठरीमें, भिन्न-भिन्न प्रकारसे मनुष्यको सुख पहुँचानेका प्रबन्ध किया गया है। घरके भीतरसे पानी बाहर निकालनेके लिये नालियाँ बनी हुई हैं। ऐसे विचारसे घर बनाया गया है कि रहनेवालोंको सब ऋतुमें सुख देवे। इस घरको देखकर हम कहते हैं कि इसका रचनेवाला कोई चतुर पुरुष था, जिसने रहनेवालोंके सुखके लिये जो-जो प्रबन्ध आवश्यक था, उसको विचारकर घर रचा। हमने रचनेवालेको देखा भी नहीं, तो भी हमको निश्चय होता है कि घरका रचनेवाला कोई था या है और वह ज्ञानवान्, विचारवान् पुरुष है।

अब हम अपने शरीरकी ओर देखते हैं। हमारे शरीर-में भोजन करनेके लिये मुँह बना है। भोजन चबानेके लिये दाँत हैं। भोजनको पेटमें पहुँचानेके लिये गलेमें नाली बनी है। उसीके पास पवनके मार्गके लिये एक दूसरी नाली बनी हुई है। भोजनको रखनेके लिये उदरमें स्थान बना है। भोजन पचकर रुधिरका रूप धारण करता है, वह हृदयमें

जाकर इकट्ठा होता है और वहाँसे सिरसे पैरतक सब नसोंमें पहुँचकर मनुष्यके सम्पूर्ण अंगको शक्ति, सुख और शोभा पहुँचाता है। भोजनका जो अंश शरीरके लिये आवश्यक नहीं है उसके मल होकर बाहर जानेके लिये मार्ग बना है। दूध, पानी या अन्य रसका जो अंश शरीरको पोसनेके लिये आवश्यक नहीं है, उसके निकलनेके लिये दूसरी नाली बनी हुई है। देखनेके लिये हमारी दो आँखें, सुननेके लिये दो कान, सूँघनेको नासिकाके दो रन्ध्र और चलने-फिरनेके लिये हाथ-पैर बने हैं। सन्तानकी उत्पत्तिके लिये जनन-इन्द्रियाँ हैं। हम पूछते हैं—क्या यह परम आश्चर्यमय रचना केवल जड-पदार्थोंके संयोगसे हुई है या इसके जन्म देने और वृद्धिमें, हमारे घरके रचयिताके समान किन्तु उससे अनन्तगुण अधिक किसी ज्ञानवान्, विवेकवान्, शक्तिमान् आत्माका प्रभाव है?

मन और वाणीकी अद्भुत शक्तियाँ

इसी विचारमें डूबते और उतराते हुए हम अपने मनकी ओर ध्यान देते हैं तो हम देखते हैं कि हमारा मन भी एक आश्चर्यमय वस्तु है। इसकी—हमारे मनकी विचारशक्ति, कल्पना-शक्ति, गणनाशक्ति, रचनाशक्ति, स्मृति, धी, मेधा सब हमको चकित करती हैं। इन शक्तियोंसे मनुष्यने क्या-क्या ग्रन्थ लिखे हैं, कैसे-कैसे काव्य रचे हैं, क्या-क्या विज्ञान निकाले हैं, क्या-क्या आविष्कार किये हैं और कर रहे हैं। यह थोड़ा आश्चर्य नहीं उत्पन्न करता। हमारी बोलने और गानेकी शक्ति भी हमको

आश्चर्यमें डुबा देती है। हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टिमें सर्वत्र दिखायी पड़ती है और यह रचना ऐसी है कि जिसके अन्त तथा आदिका पता नहीं चलता। इस रचनामें एक-एक जातिके शरीरियोंके अवयव ऐसे नियमसे बैठाये गये हैं कि सारी सृष्टि शोभासे पूर्ण है। हम देखते हैं कि सृष्टिके आदिसे सारे जगत्में एक कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है जो सदा-से चली आयी है, सर्वत्र व्याप्त है और अविनाशी है।

हमारी बुद्धि विवश होकर इस बातको स्वीकार करती है कि ऐसी ज्ञानात्मिका रचनाका कोई आदि, सनातन, अज, अविनाशी, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, जगत्-व्यापक, अनन्त शक्ति-सम्पन्न रचयिता है। उसी एक अनिर्वचनीय शक्तिको हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गॉड, खुदा, अल्लाह आदि सहस्रों नामोंसे पुकारते हैं।

वह परमात्मा एक ही है

वेद कहते हैं—

'एकमेवाद्वितीयम्, एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति, एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।'

एक ही परमात्मा है, कोई उसका दूसरा नहीं। एकहीको विप्र-लोग बहुत-से नामोंसे वर्णन करते हैं। है एक ही, किन्तु उसको बहुत प्रकारसे कल्पना करते हैं।

विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम इस बातके प्रसिद्ध

उदाहरण हैं। युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पूछा कि 'बताइये, लोकमें वह कौन एक देवता है? कौन सब प्राणियोंका सबसे बड़ा एक शरण है? कौन वह है जिसकी स्तुति करते, जिसको पूजते मनुष्यका कल्याण होता है?'

इसके उत्तरमें पितामहने कहा—

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्॥
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्॥
पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता॥

अर्थात्, 'मनुष्य प्रतिदिन उठकर सारे जगत्के स्वामी, देवताओंके देवता, अनन्त पुरुषोत्तमकी सहस्र नामोंसे स्तुति करे। सारे लोकके महेश्वर, लोकके अध्यक्ष (अर्थात् शासन करनेवाले), सर्व लोकमें व्यापक विष्णुकी, जो न कभी जन्मे हैं, न जिनका कभी मरण होगा, नित्य स्तुति करता हुआ मनुष्य सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। जो सबसे बड़ा तेज है, जो सबसे बड़ा तप है, सबसे बड़े ब्रह्म हैं और जो सब प्राणियोंके सबसे बड़े शरण हैं। जो पवित्रोंमें सबसे पवित्र, सब मंगल बातोंके मंगल, देवताओंके देवता और सब प्राणीमात्रके अविनाशी पिता हैं।'

इससे स्पष्ट है कि विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम तथा और ऐसे स्तोत्र सब एक ही परमात्माकी स्तुति करते हैं। और मनुष्यमात्रको उचित है कि नित्य सायं-प्रातः उस परमात्माका ध्यान करे और उनकी स्तुति करे।

उसी एककी तीन संज्ञा हैं

ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये उसी एक परमात्माकी तीन संज्ञा अर्थात् नाम हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है—

सृष्टिस्थित्यन्तकरणी ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्।
स संज्ञां याति भगवान् एक एव जनार्दनः॥

वे एक ही जनार्दन भगवान् सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नामकी तीन संज्ञा प्राप्त करते हैं।

यही बात बृहन्नारदीयपुराणमें भी लिखी है—

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावरजंगमम्॥
तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम्।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदुच्यते॥

भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वत्र व्यापक तथा मायासे अलिप्त हैं, यह स्थावर-जंगमरूप सारा संसार उनसे व्याप्त है। उन जरारहित आदिदेवताको कोई शिव, कोई सदा सत्यस्वरूप विष्णु और कोई ब्रह्मा कहते हैं।

इसी प्रकार शिवपुराणमें स्वयं महेश्वरका वचन है—

त्रिधा भिन्नो ह्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया ।
सर्गरक्षालयगुणैः निष्कलोऽयं सदा हरे ॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ॥

हे विष्णो ! सृष्टि, पालन तथा संहार इन तीन गुणोंके कारण मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन भेदसे युक्त हूँ। हे हरे ! वास्तवमें मेरा स्वरूप सदा भेद-हीन है। मैं, आप, यह (ब्रह्मा) तथा रुद्र और आगे जो कोई भी होंगे इन सबका एक ही रूप है, उनमें कोई भेद नहीं है, भेद माननेसे बन्धन होता है।

भागवतमें भी स्वयं भगवान्‌का वचन है—

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥

हम, ब्रह्मा और शिव संसारके परम कारण हैं, हम सबके आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश और निर्विशेष हैं। हे ब्राह्मण ! वह मैं (विष्णु) अपनी त्रिगुणमयी मायामें प्रवेश करके संसारकी सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करता हुआ भिन्न-भिन्न कार्योंके अनुसार नाम धारण करता हूँ।

इसलिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनको भिन्न-भिन्न मानना भूल है। ये एक ही परमात्माकी तीन संज्ञा हैं।

इसीलिये शिवपुराणमें भी लिखा है—

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः।
नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम्॥

शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसार-वैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा—ये आठ नाम मुख्यरूपसे शिवके बोधक हैं।

इसलिये यह स्पष्ट है 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' 'ॐ नमो नारायणाय' 'ॐ नमः शिवाय' 'श्रीरामाय नमः' 'श्रीकृष्णाय नमः'—ये सब मन्त्र एक ही परमात्माकी वन्दना हैं।

उस परमात्माका क्या रूप है?

वेद कहते हैं—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'

वह ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप एवम् अनन्त है।

भागवतमें भी लिखा है—

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम्।
सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम्॥
ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः।
ज्ञानं मात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान्।
दृश्यादिभिः पृथग्भावैः भगवानेक ईयते॥

ब्रह्म सत्य है, सदा रहा है, है भी, सदा रहेगा भी। वह ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है। उसका स्वयं शरीर नहीं है, किन्तु विनाशमान शरीरोंमें पैठकर वह संसारकी लीला कर रहा है। वह केवल निर्मल ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण है। उसका आदि नहीं, अन्त नहीं। वह नित्य और अद्वितीय है। एक होनेपर भी अनेक रूपोंमें दिखायी देता है।

दूसरे स्थानमें कहा है—

शरीरोंके भीतर बैठा हुआ आत्मा पुराणपुरुष साक्षात् स्वयं-प्रकाश, अज, परमेश्वर, नारायण, भगवान् वासुदेव अपनी मायासे अपने-रचित शरीरोंमें रम रहा है।

ब्रह्मका पूर्ण और अत्यन्त हृदयग्राही निरूपण—वेद, उप-निषद् और पुराणोंका सारांश—भागवतके एकादश स्कन्धके तीसरे अध्यायमें दिया हुआ है।

राजा जनकने ऋषियोंसे कहा—'हे ऋषिगण! आपलोग ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतएव आप मुझे अब यह बताइये कि जिनको नारायण कहते हैं उन परब्रह्म परमात्माका ठीक स्वरूप क्या है?'

पिप्पलायन ऋषिने कहा—'हे नृप! जो इस विश्वके सृजन, पालन और संहारका कारण है परन्तु स्वयं जिसका कोई कारण नहीं है; जो स्वप्न, जागरण और गहरी नींदकी दशाओंमें भीतर और बाहर भी वर्तमान रहता है; देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय आदि जिससे सञ्जीवित होकर अर्थात् प्राण पाकर अपने-अपने

कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसी परमतत्त्वको नारायण जानो। जैसे चिनगारियाँ अग्निमें प्रवेश नहीं पा सकतीं, वैसे ही मन, वाणी, आँखें, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियाँ उस परमतत्त्वका ज्ञान ग्रहण करनेमें असमर्थ हैं और वहाँतक पहुँच न सकनेके कारण उसका निरूपण नहीं कर सकतीं।

वह परमात्मा कभी जन्मा नहीं, न वह कभी मरेगा, न वह कभी बढ़ता है और न घटता है; जन्म-मरण आदिसे रहित वह सब बदलती हुई अवस्थाओंका साक्षी है, एवं सर्वत्र व्याप्त है, सब कालमें रहा है और रहेगा, अविनाशी है और ज्ञानमात्र है। जैसे प्राण एक है तो भी इन्द्रियोंके भिन्न होनेसे आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, नाक सूँघती है इत्यादि भावोंके कारण—एक दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं, ऐसे ही आत्मा एक होनेपर भी भिन्न-भिन्न देहोंमें अवस्थित होनेके कारण भिन्न प्रतीत होता है।

जितने जीव जरायुसे उत्पन्न होते हैं—मनुष्य, गौ, घोड़े, हाथी, सिंह, कुत्ते, भेड़, बकरी आदि, जो पक्षीवर्ग अण्डोंसे उत्पन्न होते हैं, जो कीटवर्ग पसीने, मैल आदिसे उत्पन्न होते हैं और जो वृक्षवर्ग (पेड़, विटप) पृथिवीको फोड़कर उगते हैं, इन सबोंमें—सम्पूर्ण सृष्टिमें—जहाँ-जहाँ जीवके साथ प्राण दौड़ता हुआ दिखायी देता है, वहाँ-वहाँ ब्रह्म है। जब सब इन्द्रियाँ सो जाती हैं, जब 'मैं हूँ' यह अहंभाव भी लीन हो जाता है, उस समय जो निर्विकार साक्षीरूप हमारे भीतर बैठा हुआ ध्यानमें आता है और जिसका हमारे जागनेकी अवस्थामें 'हम अच्छे

सोये' 'यह सपना देखा' इसप्रकारकी स्मृति होती है, वही ब्रह्म है, इत्यादि ।

यह ब्रह्म कहाँ है ?

वेद कहते हैं—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः
साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥

एक ही परमात्मा सब प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ है, सबमें व्याप रहा है, सब जीवोंके भीतरका अन्तरात्मा है, जो कुछ कार्य सृष्टिमें हो रहा है, उसका नियन्ता है । सब प्राणियों-के भीतर वस रहा है, सब संसारके कार्योंका साक्षीरूपमें देखने-वाला, चैतन्य, केवल एक, जिसका कोई जोड़ नहीं और जो गुणोंके दोपसे रहित है ।

वेद, स्मृति, पुराण कहते हैं कि यह देवोंका देव, अग्निमें, जलमें, वायुमें, सारे भुवनमें, सब ओपधियोंमें, सब वनस्पतियोंमें, सब जीवधारियोंमें व्याप रहा है ।

कहते हैं—

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एव-
मेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

—वह परमदेव विश्वका रचनेवाला सदा प्राणियोंके हृदयमें स्थित है। अपने-अपने हृदयमें स्थित इस महात्माको जो शुद्ध हृदयसे, विमल मनसे अपनेमें विराजमान देखते हैं वे अमर होते हैं।

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके
न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो
न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥

लोकमें न उसका कोई स्वामी है, न उसके ऊपर आज्ञा चलानेवाला है, न उसका कोई चिह्न है। वही सबका कारण है, उसका कोई कारण नहीं, उसका कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं, न उसका कोई रक्षक है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

उस सब सामर्थ्य और अधिकार रखनेवालोंके सबसे बड़े परम ईश्वर, देवताओंके सबसे बड़े देवता, स्वामियोंके सबसे बड़े स्वामी, सारे त्रिभुवनके स्वामी, परम पूजनीय देवको हमलोगोंने जाना है।

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

सोइ सच्चिदानंदघन रामा। अज विज्ञानरूप, बलधामा॥
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता। अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥

अगुण अदभ्र गिरा गोतीता। समदर्शी अनवद्य अजीता॥
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुखसन्दोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी॥
इहाँ मोहकर कारण नाहीं। रवि-सम्मुख तम कबहुँ कि जाहीं॥

सूरदासजीने कहा है—

जगत्पिता जगके आधार।
तुम सबके गुरु सबके स्वामी,
तुम सबहिनके अन्तर्यामी॥
हम सेवक तुम जगत अधार,
नमो नमो तुम्हें बारम्बार।
सर्व शक्ति तुम सर्व अधार,
तुम्हें भजै सो उतरै पार॥
घट-घट माँहिं तुम्हारो वास,
सर्व ठौर जिमि दीप-प्रकास।
एहि बिधि तुमको जानै जोई,
भक्तरु ज्ञानी कहिये सोई॥
जगत-पिता तुम ही हो ईश,
याते हम विनवत जगदीश।
तुमसम द्वितिय और नहिं आहि,
पटतर देहि नाथ हम काहि॥
नाथ कृपा अब हमपर कीजे,
भक्ति आपनी हमको दीजे।

प्रेम भक्ति बिन कृपा न होइ,
सर्व शास्त्रमें देखे जोइ ॥

तपसी तुमको तप करि पावैं,
सुनि भागवत गृही गुण गावैं।
कर्मयोग करि सेवत कोई,
ज्यौं सेवे त्यों ही गति होई ॥

तीन लोक हरि करि विस्तार,
ज्योति आपनी करि उँजियार।
जैसा कोऊ गेह सँवार,
दीपक बारि करै उँजियार ॥
त्यों हरि-ज्योति आप प्रकटाई,
घट-घटमें सोई दरसाई।
नाथ तुम्हारी ज्योति-अभास,
करत सकल जगको परकास ॥
थावर-जंगम जहलौं भये,
ज्योति तुम्हारी चेतन किये।
तुम सब ठौर सबन तें न्यारे,
को लखि सकै चारित्र तुम्हारे ॥
सो प्रकाश तुम साजे सदा,
जीव कर्म करि बन्धन बँधा।
सर्वव्यापी तुम सब ठाहर,
तुमहिं दूर जानत नर नाहर ॥

तुम सबके प्रभु अन्तर्यामी,

जीव विसर रह्यो तुमको स्वामी ॥

यह परमात्मा जीवरूपमें प्रत्येक जीवधारीके हृदयके बीचमें विराजमान है।

ईश्वर-अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी ॥

स्वयं भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

हे अर्जुन! ईश्वर सब जीवोंके हृदयमें रहते हैं।

इस विषयमें याज्ञवल्क्य मुनिने सब वेदोंका तत्त्व यों वर्णन किया है—

एक सौ चवालीस सहस्र हित और अहित नामकी नाड़ियाँ प्रत्येक मनुष्यके हृदयसे शरीरमें दौड़ी हुई हैं। उसके बीचमें चन्द्रमाके समान प्रकाशवाला एक मण्डल है, उसके बीचमें अचल दीपके समान आत्मा विराजमान है, उसीको जानना चाहिये। उसीका ज्ञान होनेसे मनुष्य आवागमनसे मुक्त होता है।

यह आत्मा मनुष्यसे लेकर पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, वृक्ष-विटप समस्त छोटे-बड़े जीवधारियोंमें समानरूपसे विराजमान है।

वेदव्यासजी कहते हैं—

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु ।

स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा ॥

ब्रह्मकी ज्योति अपने भीतर ही है, वह सब जीवधारियोंमें

एक सम है, मनुष्य मनको अच्छी तरह शान्त और स्थिर कर उसीसे उसको देख सकता है।

गीतामें स्वयं भगवान्‌का वचन है—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥

वही पण्डित है जो विनाश होते हुए मनुष्योंके बीचमें विनाश न होते हुए सब जीवधारियोंमें बैठे हुए परमेश्वरको देखता है।

सब ज्योतियोंकी वह ज्योति, समस्त अन्धकारके परे चमकता हुआ, ज्ञानस्वरूप, जाननेके योग्य, जो ज्ञानसे पहचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सबका सुहृद्, सब प्राणियोंके हृदयमें बैठा है।

ऐसे घट-घट-व्यापक उस एक परमात्माकी मनुष्यमात्रको विमल भक्तिके साथ उपासना करनी चाहिये। और यह ध्यान-कर कि वह प्राणीमात्रमें व्याप्त है, प्राणीमात्रसे प्रीति करनी चाहिये। सब जीवधारियोंको प्रेमकी दृष्टिसे देखना चाहिये। जैसा कि भक्तशिरोमणि प्रह्लादजीने कहा है—

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥

दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ।
खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥

(श्रीमद्भा० ७ । ७ । ५३-५५)

अतएव हे दानवो ! सबको अपने ही समान सुख-दुःख होता है, ऐसी बुद्धि धारण करके सब प्राणियोंके आत्मा और ईश्वर भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करो । दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, व्रजवासी गोपाल, पशु, पक्षी और अन्य पातकी जीव भी भगवान् अच्युतकी भक्तिसे निस्सन्देह मोक्षको प्राप्त हो गये हैं । गोविन्द भगवान्के प्रति एकान्त भक्ति करना और चराचर समस्त प्राणियोंमें भगवान् है ऐसी भावना करना ही इस लोकमें सबसे उत्तम स्वार्थ है ।

सनातन-धर्मका मूल

भगवान्वासुदेवो हि सर्वभूतेष्ववस्थितः ।
एतज्ज्ञानं हि सर्वस्य मूलं धर्मस्य शाश्वतम् ॥

यह ज्ञान कि भगवान् वासुदेव सब प्राणियोंके हृदयमें स्थित हैं, सम्पूर्ण सनातन-धर्मका सदासे चला आता हुआ और सदा रहनेवाला मूल है । इसी ज्ञानको भगवान्ने अपने श्रीमुखसे गीतामें कहा है—

'समोऽहं सर्वभूतेषु'

मैं सब प्राणीमात्रमें एक समान हूँ। तथा यह कि—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

विद्या और विनयसे युक्त ब्राह्मणमें, गौ-बैलमें, हाथीमें, कुत्तेमें और चाण्डालमें पण्डित लोग समदर्शी होते हैं, अर्थात् सुख-दुःखके विषयमें उनको समानभावसे देखते हैं। तथा यह भी कि—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

जो पुरुष सबके सुख-दुःखके विषयमें अपनी उपमासे समान दृष्टिसे देखता है उसीको सबसे बड़ा योगी समझना चाहिये ।

इसीलिये महर्षि वेदव्यासजीने कहा है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥
न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।
एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥

सुनो धर्मका सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, जिस बातसे अपनेको पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरोंके प्रति न करो।

दूसरेके प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिये जिसको

यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेपमें यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बातकी कामनासे किये जाते हैं।

जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्॥

जो चाहता है कि मैं जीऊँ, वह कैसे दूसरेका प्राण हरनेका मन करे? जो-जो बात मनुष्य अपने लिये चाहता है उसको चाहिये कि वही-वही बात औरोंके लिये भी सोचे।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय धर्म जिनका सब समयमें पालन करना सब प्राणियोंके लिये विहित है और जिनके उल्लंघन करनेसे आदमी नीचे गिरता है, इन्हीं सिद्धान्तोंपर स्थित हैं। इन्हीं सिद्धान्तोंपर वेदोंमें गृहस्थोंके लिये पञ्चमहायज्ञका विधान किया गया है कि जो भूलसे भी किसी निर्दोष जीवकी हिंसा हो जाय तो हम उसका प्रायश्चित्त करें। जो हिंसक जीव हैं, जो हमारा या किसी दूसरे निर्दोष प्राणीका प्राणाघात करना चाहते हैं, या उनका धन हरना या धर्म बिगाड़ना चाहते हैं, जो हमपर या हमारे देशपर, हमारे गाँवपर आक्रमण करते हैं, या जो आग लगाते हैं या किसीको विष देते हैं—ऐसे लोग आततायी कहे जाते हैं। अपने या अपने किसी भाई या बहिनके प्राण, धन, धर्म, मानकी रक्षाके लिये ऐसे आततायी पुरुषों या जीवोंका, आवश्यकताके अनुसार आत्मरक्षाके सिद्धान्तपर वध करना धर्म है। निरपराधी अहिंसक जीवोंकी हिंसा करना अधर्म है।

इसी सिद्धान्तपर वेदके समयसे हिन्दू लोग सारी सृष्टिके निर्दोप जीवोंके साथ सहानुभूति करते आये हैं। गौको हिन्दू लोकमाता कहते हैं, क्योंकि वह मनुष्य-जातिको दूध पिलाती है और सब प्रकारसे उनका उपकार करती है। इसलिये उसकी रक्षा करना तो मनुष्यमात्रका विशेष कर्त्तव्य है। किन्तु किसी भी निर्दोप या निरपराध प्राणीको मारना, किसीका धन या प्राण हरना, किसीके साथ अत्याचार करना, किसीको झूठसे ठगना, ऊपर लिखे धर्मके परम सिद्धान्तके अनुसार अकार्य अर्थात् न करनेकी बातें हैं। और अपने समान सुख-दुःखका अनुभव करनेवाले जीवधारियोंकी सेवा करना, उनका उपकार करना, यह त्रिकालमें सार्वलौकिक सत्य धर्म है।

इसी मूल-सिद्धान्तके अनुसार वेद-धर्मके माननेवालोंको उपदेश दिया गया है कि न केवल मनुष्योंको किन्तु पशु-पक्षियों तथा समस्त जीवोंको बलिवैश्वदेवके द्वारा नित्य कुछ आहार पहुँचाना अपना धर्म समझें। यह बात नीचे लिखे श्लोकोंसे स्पष्ट है।

बलिवैश्वदेवके श्लोक

ततोऽन्यदन्नमादाय भूमिभागे शुचौ पुनः।
दद्यादशेषभूतेभ्यः स्वेच्छया तत्समाहितः॥
देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरगभूतसंघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्याः
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकायभूत-
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसंघाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥
इत्युच्चार्य नरो दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितम् ।
भुवि भूतोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ॥

और-और यज्ञोंको करनेके बाद मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार दूसरा अन्न ले पृथिवीके पवित्र भागमें रख फिर सावधानता-पूर्वक समस्त जीवोंके लिये बलि दे। और यों कहे—'देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, नाग अन्य भूत-समूह, प्रेत, पिशाच तथा सम्पूर्ण वृक्ष एवं चींटी, कीड़े और पतंगे आदि जीव जो कर्म-बन्धनमें बँधे हुए भूखे तड़प रहे हों और मुझसे अन्न चाहते हों, उनके लिये यह अन्न मैंने रख छोड़ा है, इससे उनकी तृप्ति हो और वे सुखी हों। सब जीव, यह अन्न और मैं

सब विष्णु ही हैं उनसे अन्य कुछ भी नहीं है, इस कारण मैं जीवोंके शरीरभूत इस अन्नको उन प्राणियोंकी रक्षाके लिये देता हूँ। यह जो चौदह प्रकारका भूतोंका समुदाय है, इसमें जो सम्पूर्ण जीव-समूह स्थित हैं उनकी तृप्तिके लिये मैंने यह अन्न दिया है। वे प्रसन्न हों।' मनुष्य यों कहकर प्राणियोंके उपकारार्थ पृथिवीपर श्रद्धापूर्वक अन्न दे, क्योंकि गृहस्थ सबका आधार होता है।

इसी धर्मके अनुसार सनातन-धर्मी नित्य तर्पण करनेके समय न केवल अपने पितरोंका तर्पण करते हैं किन्तु समस्त ब्रह्माण्डके जीवधारियोंका। यह नीचे लिखे श्लोकोंसे विदित है, यथा—

देवाः सुरास्तथा यक्षाः नागा गन्धर्वराक्षसाः।
पिशाचाः गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाऽखिलाः॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया॥
ये बान्धवाऽबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु यश्चास्मत्तोयमिच्छति॥

देवता, दैत्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्ष-वर्ग, पक्षीगण, जलमें रहनेवाले जीव, बिलमें रहनेवाले जीव, वायुके आधारपर रहनेवाले जन्तु, ये सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। समस्त नरकोंकी यातनामें जो प्राणी दुःख भोग रहे हैं, उनके दुःख शान्त करनेकी इच्छासे मैं यह जल देता

हूँ। जो मेरे बन्धु-बान्धव रहे हों और जो बान्धव न रहे हों और जो किसी और जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, उनकी तृप्तिके लिये और उनकी भी तृप्तिके लिये जो मुझसे जल पानेकी इच्छा रखते हों, मैं यह जल अर्पण करता हूँ।

वैश्वदेवमें जो अन्न कुत्ते और कौवोंके लिये निकाला जाता है उसको छोड़कर शेष बलिकी मात्रा बहुत कम होती है इसलिये वह 'सर्वभूतेभ्यः' सब प्राणियोंको पहुँच नहीं सकता। तथापि यह जानते हुए भी—बलिवैश्वदेवका करना प्रत्येक गृहस्थका कर्त्तव्य इसलिये माना गया है कि वह उस पवित्र, उदार भावको प्रकट करता है कि मनुष्य मानता है कि उसका सब जीवधारियोंसे भाईपनका सम्बन्ध है और इस भावको आँसुओंके समान प्रेमके जलसे नित्य सींचकर जगत्के आकाशमें जीवधारीमात्रमें परस्पर भाईपनका भाव स्थापित करनेका उत्कृष्ट और प्रशंसनीय मार्ग है।

इस धर्मकी उदारताकी प्रशंसा कौन कर सकता है? इसकी उदारता इस धर्मके बड़े-से-बड़े परम पूजित आचार्य महर्षि वेद-व्यासकी, जो 'सर्वभूतहिते रतः' सब प्राणियोंके हितमें निरत रहते थे, इस प्रार्थनासे भी प्रकट है कि—

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्॥

सब प्राणी सुखी हों, सब नीरोग रहें, सब सुख-सौभाग्य देखें, कोई दुखी न हो।

उसी धर्मके प्राणाधार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सारे जगत्के प्राणियोंको यह निमन्त्रण दे दिया है कि—'सब और धर्मोंको छोड़कर तुम मुझ एककी शरणमें आओ। मैं तुमको सब पापोंसे छुड़ा दूँगा। सोच मत करो।'

उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा की है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

कि 'मैं सब प्राणियोंके लिये समान हूँ। न मैं किसीका द्वेष करता हूँ, न कोई मेरा प्यारा है। जो मुझको भक्तिसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ; पापी-से-पापी भी क्यों न हो यदि वह और सबको छोड़कर मेरा ही भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। थोड़े ही समयमें वह धर्मात्मा हो जायगा और उसको शाश्वती शान्ति मिल जायगी। हे अर्जुन! मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, जो कोई मेरा भक्त है, उसका बुरा नहीं होगा। हे कुन्तीके पुत्र! मेरी शरणमें आकर जो पापयोनिसे

उत्पन्न प्राणी भी हैं और स्त्री, वैश्य और शूद्र—ये भी निश्चय सबसे ऊँची गतिको पावेंगे।'

धन्य हैं वे लोग जिनको इस पवित्र और लोक-प्रेमसे पूर्ण धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ है। मेरी यह प्रार्थना है कि इस ब्रह्म-ज्योतिकी सहायतासे सब धर्मशील जन अपने ज्ञानको विशुद्ध और अविचल कर और अपने उत्साहको नूतन और प्रबल कर सारे संसारमें इस धर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करें और समस्त जगत्को यह विश्वास करा दें कि सबका ईश्वर एक ही है और वह अंशरूपसे न केवल सब मनुष्योंमें किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष और विटप सबमें समानरूपसे अवस्थित है और उसकी सबसे उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणीमात्रमें ईश्वरका भाव देखें, सबसे मित्रताका भाव रक्खें और सबका हित चाहें। सार्वजनीन प्रेमसे इस सत्य ज्ञानके प्रचारसे ईश्वरीय शक्तिका संगठन और विस्तार करें। जगत्से अज्ञानको दूर करें, अन्याय और अत्याचार-को रोकें और सत्य, न्याय और दयाका प्रचारकर मनुष्योंमें परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें॥ इति शम्॥

सप्त-महाव्रत

लेखक—महात्मा गांधी

इसमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद और अभय इन सात महाव्रतोंपर बड़ी ही सुन्दर अनुभवपूर्ण व्याख्या है। मूल्य केवल ⌐)

माता

श्रीअरविन्दकी मदर (Mother) नामक अंगरेजी पुस्तकका हिन्दी-अनुवाद

अनुवादक—पं० श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे

इस पुस्तकका इतना ही परिचय देना बहुत होगा कि यह श्रीअरविन्दके विचारोंकी एक श्रेष्ठ रचना है। मूल्य।)

तत्त्व-चिन्तामणि

लेखक—श्रीजयदयाल गोयन्दका

इसके मननसे धर्ममें श्रद्धा, भगवान्में प्रेम और विश्वास एवं नित्यके बर्तावमें सत्य व्यवहार और सबसे प्रेम, अत्यन्त आनन्द एवं शान्तिकी प्राप्ति होती है। मूल्य ॥।⌐) सजिल्द १)

तुलसी-दल

लेखक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

इसमें छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, आस्तिक-नास्तिक, विद्वान्-मूर्ख, भक्त-ज्ञानी, गृहस्थी-त्यागी, कला और साहित्य-प्रेमी सबके लिये कुछ-न-कुछ उन्नतिका मार्ग मिल सकता है। पृष्ठ २६४, मूल्य ॥) सजिल्द ॥≈)